International Journal of Education and Science Research Review
Volume-11, Issue-1 January-February-2024 E-ISSN 2348-6457
(Peer-Reviewed, Open Access, Fully Refereed International Journal) P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Impact Factor - 7.02 Email- editor@ijesrr.org

मुगलकालीन समाज में ग्रामीण आर्थिक जीवन व हिन्दु मुस्लिम सम्बन्धों का परस्पर सामंजस्य

1 **Nikita Rani, M.A. History, (UGC-NET),**
2 Assistant Professor, B.R.College Higher Education of Technology, Deoband, Maa Shakumbhari University, Saharanpur.
3 Mail ID:nikitapundir0861@gmail.com

3.1 प्रस्तावना

मध्यकालीन भारत में सामाजिक और आर्थिक जीवन में एक निरंतरता बनी रही। सल्तनतकालीन परिस्थितियों और मुगलकालीन परिस्थितियों में कोई मौलिक अंतर नहीं था। केवल कुछ आंशिक परिवर्तन आये थे। मुगलकालीन सामाजिक और आर्थिक जीवन के सम्बन्ध में अधिक विस्तृत सूचनाएँ उपलब्ध हैं। नगरीय जीवन के सम्बन्ध में मुख्यतः यूरोपीय यात्रियों के वृतांत, व्यापारिक कम्पनियों के विपन्न, तथा ग्रामीण जीवन के सम्बन्ध में मुगल प्रशासनिक दस्तावेज इस सूचना की प्राप्ति में सहायक हैं।

1.1 सामाजिक जीवन

मुगलकालीन समाज की संरचना सल्तनतकाल से बहुत भिन्न नहीं थी, सिवाय इसके कि इस काल में जैनों की स्थिति में कुछ परिवर्तन आये थे, सिक्ख एक नये और महत्वपूर्ण सम्प्रदाय के रूप में उभरे थे और ईसाईयों की संख्या भी बढ़ी थी। उन्हें मुगल दरबार में ज्यादा प्रभाव भी प्राप्त हुआ था। हिन्दू समाज में पूर्ववत् जाति पर आधारित विभाजन बने रहे। भक्ति आन्दोलन के प्रभाव में जाति–प्रथा का खण्डन करने वाले सन्तों का पदार्पण भी हुआ। उनके द्वारा नए सम्प्रदायों की स्थापना भी हुई जिनके सदस्य जाति–प्रथा के सिद्धान्तों को नहीं मानते थे परन्तु इन सबका प्रभाव अत्यन्त सीमित रहा और जाति–प्रथा की जटिलता में कोई उल्लेखनीय कमी नहीं आई। मुस्लिम समाज का स्वरूप भी पूर्ववत् रहा। केवल विदेशी मुसलमानों में ईरानियों की संख्या और प्रभाव में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। यह प्रक्रिया अकबर के समय में आरम्भ हुई। हब्शियों और अरबों का महत्व पूर्व काल की तुलना में बहुत कम हो गया। 18वीं शताब्दी तक मुगल सामन्तों में दो वर्ग ही मुख्य रूप से महत्वपूर्ण रह गए थे। ये थे भारतीय मुसलमान और तूरानी। इस काल की दरबारी गुटबंदियों और षडयंत्रों में इन दोनों की भूमिका विशेष महत्व रखती है।[1]

समाज में महिलाओं की स्थिति पहले की तुलना में सुधरी थी। मुगल काल में अनेक विदुषी और प्रभावशाली महिलाओं की चर्चा मिलती है, जो हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही वर्गों से सम्बन्धित थीं। जैसे जहाँआरा, नूरजहाँ, गुलबदन बेगम, चाँदबीबी, दुर्गावती और ताराबाई परन्तु सामान्यतः महिलाओं को अनेक असुविधाओं का सामना करना पड़ता था, जैसे पर्दा प्रथा, बहु–विवाह, बाल–विवाह, सती प्रथा, बाल–हत्या आदि। अकबर द्वारा सामाजिक सुधारों के प्रयास किये गए। उसने स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन दिया। बहुविवाह एवं सती का प्रचलन रोका और विवाह के लिए निम्नतम आयु निर्धारित करने के आदेश दिये। परन्तु ये प्रयास बहुत सफल सिद्ध नहीं हुए।[2]

[1] चोपड़ा, पी0एन. आपसिट, पेज–6
[2] अशरफ, आपसिट, पेज–205

दूसरी ओर दासों की स्थिति में सल्तनकाल की तुलना में गिरावट आयी। दासों को अब मात्र सेवक के रूप में अथवा घरेलू काम–काज के सहायक के रूप में प्रयोग किया जाने लगा। उन्हें प्रशासनिक अथवा सैनिक पदों पर नियुक्ति वस्तुतः बन्द हो गयी। स्वाभाविक रूप से समाज में उनकी स्थिति में गिरावट आयी।

मुगलकाल में शिक्षा के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह आया कि मदरसों के पाठ्यक्रम में धर्मातिरिक्त विषयों, जैसे गणित, दर्शन, साहित्य आदि का महत्व बढ़ा। इसी के साथ गैर मुस्लिमों द्वारा फारसी शिक्षा के प्रति अधिक अभिरूचि दिखायी गयी। इसके दो कारण थे। एक तो हिन्दुओं को प्रशासनिक पदों पर काफी संख्या में नियुक्तियाँ मिलने लगी थीं और इनके लिए फारसी शिक्षा इन नौकरियों की प्राप्ति के लिए अनिवार्य थी क्योंकि फारसी ही प्रशासनिक कार्यों की भाषा थी। दूसरे पाठ्यक्रम में धर्मातिरिक्त विषयों का महत्व बढ़ने के कारण गैर–मुस्लिमों के लिए भी अब यह शिक्षा पद्धति अधिक उपयोगी बन गयी थी। यह परिवर्तन लोदी काल से ही आरम्भ हो गये थे, मगर इनका परिपक्व रूप मुगलकाल में ही प्रस्तुत हुआ। इसी के साथ–साथ हिन्दू और मुस्लिम समाज में शिक्षा का परम्परागत रूप भी पूर्ववत बना रहा।[3]

हिन्दू और मुस्लिम समाज के बीच सम्पर्क से एक मिली–जुली परम्परा का आरम्भ हुआ। रहन–सहन के ढंग, खान–पान, वेश–वूषा, त्यौहार एवं उत्सव आदि में एक मिली–जुली परम्परा विकसित हुई। मुगलकाल में इस समन्वयवादी का दरबारी जीवन से भी घनिष्ठ सम्पर्क रहा। अकबर द्वारा राजपूत शासकों के प्रति मैत्रीपूर्ण नीति अपनाने और वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना से शासक वर्ग के जीवन में भी समन्वय आया और मुगल दरबार के रीति–रिवाज पर राजपूत परम्परा का प्रभाव पड़ा। बाद में मुगल परम्पराओं ने राजपूतों के दरबारी जीवन को भी प्रभावित किया।

1.2 ग्रामीण आर्थिक जीवन

मुगल साम्राज्य में आर्थिक जीवन का अध्ययन मुख्यतः दो स्तरों पर किया जा सकता है, ग्रामीण और नगरीय। ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में कृषि की प्रधानता पूर्ववत बनी रही, जबकि नगरीय जीवन में व्यापार और शिल्प–उत्पादन की स्थिति पहले की तुलना में अधिक समुन्नत रही। सबसे बढ़कर यूरोपीय व्यापार का मार्ग प्रशस्त हुआ और विभिन्न यूरोपीय व्यापारी कम्पनियों ने भारत में अपने क्रिया–कलाप आरम्भ किए। मुद्रा प्रणाली भी अधिक सुसंगठित बनी और बैकिंग एवं बीमाकरण आदि की दिशा में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई। इन परिवर्तनों के बावजूद मुगलकालीन अर्थ–व्यवस्था का स्वरूप कृषि–प्रधान ही रहा और राज्य की आमदनी का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत लगान या भू–राजस्व ही रहा।

1.3 अकबर के आरम्भिक प्रयोग

शेरशाह की मृत्योपरांत इस व्यवस्था की कार्यकुशलता प्रभावित हुई थी। अतः अकबर को अपने आरम्भिक शासनकाल में वार्षिक निर्धारण की व्यवस्था अपनानी पड़ी। इसके अन्तर्गत स्थानीय कानूनगो द्वारा प्रस्तुत जानकारी के आधार पर लगान की वसूली की जाने लगी। लेकिन इसमें कुछ कठिनाइयों का अनुभव किया गया क्योंकि अधिकतर कानूनगो सही स्थिति की सूचना नहीं देते थे। 1573 के लगभग अकबर ने लगान वसूली के लिए करोड़ी नामक अधिकारी नियुक्त किए। इनके क्षेत्रों से एक करोड़ दाम (ढाई लाख रूपये) प्रतिवर्ष की राशि लगान में प्राप्त होती थी। इन्हें कानूनगो द्वारा प्रदत्त सूचनाओं के सम्बन्ध में छानबीन करने की भी जिम्मेदारी दी गयी। भूमि की उत्पादकता, वास्तविक उपज की मात्रा और स्थानीय बाजार में प्रचलित

[3] बनारसी प्रसाद सक्सेना, शाहजहां ऑफ देहलीख पृ0 27

मूल्यों आदि के बारे में इस प्रकार विस्तृत और विश्वसनीय आंकड़ें संकलित किये गये। इस प्रकार जो जानकारी प्राप्त हुई उसकी सहायता से 1580–81 में अकबर ने आइने दहसाला की व्यवस्था लागू की।[4]

1.4 ज़ब्त व्यवस्था

अकबर ने शेरशाह की व्यवस्था में सबसे महत्वपूर्ण संशोधन भूमि के वर्गीकरण के क्षेत्र में किया। उसने भूमि को खेती की बारम्बारता के आधार पर चार श्रेणियों में विभक्त कर दिया जो निम्नलिखित थीं–

1. पोलज–जिसमें प्रति वर्ष खेती का काम होता था।
2. पड़ती (पड़ौती)–जिसमें एक वर्ष के अन्तर पर खेती की जाती थी।
3. चाचर–जो दो से चार साल तक खेती के काम में नहीं लाई जाती थी।
4. बंजर–जो पाँच साल या उससे अधिक समय तक खेती के काम में नहीं लाई जाये।

1.5 आईने दहसाला

अकबर द्वारा सबसे महत्वपूर्ण संशोधन 'आइने दहसाला' (दस वर्षीय नियम) के रूप में किया गया। इसे 1580–81 ई॰ में लागू किया गया जो अकबर का चौबीसवाँ शासकीय वर्ष था। इसके विकास में उन सभी आंकड़ों का उपयोग हुआ जो विगत वर्षों में संकलित किये गये थे। पिछले दस वर्षों में, अर्थात् 1571 से 1580 ई॰ के बीच, विभिन्न क्षेत्रों से प्रति वर्ष अनाज के उत्पादन की दरें निर्धारित की गईं। और इसका दस–वर्षीय औसत निकाल लिया गया। इसे 'रै' कहते थे। प्रति वर्ष उपज में कमी–वेशी से पृथक इसी 'रै' को उस क्षेत्र की सामान्य उपज माना गया जो लगान निर्धारण का आधार बनी। फिर प्रति वर्ष के मूल्यों का औसत दस वर्ष के अनुसार निर्धारित किया गया जिसके आधार पर लगान की औसत नगद–दर निर्धारित की गई जिसे 'दस्तूर' कहते थे। प्रत्येक प्रकार की भूमि से अलग–अलग 'दस्तूर' निर्धारित कर लिए गये जिसके अनुसार किसान से लगान वसूली नियमित रूप से होने लगी। इसका लाभ यह हुआ कि प्रति वर्ष लगान–निर्धारण की समस्या का संतोषजनक समाधान प्रस्तुत हुआ।

आईने दहसाला की व्याख्या के सम्बन्ध में इतिहासकारों में मतभेद है। मोरलैन्ड ने इसे दस वर्षीय प्रबन्ध का नाम दिया है, जो गलत है। इश्तयाक हुसैन कुरैशी के अनुसार इसके अन्तर्गत लगान का निर्धारण प्रत्येक वर्ष किया जाता था और इसमें दस वर्षीय औसत को बनाए रखने के लिए प्रति वर्ष की दरों को जोड़कर और पिछले दस वर्षों की अवधि के अंतिम वर्ष की दरों को हटाकर, औसत का पुनः निर्धारण होता था। इरफान हबीब ने पुनरीक्षण की इस व्यवस्था का कोई वर्णन नहीं करते हुए स्पष्ट किया है कि आइने दहसाला के अन्तर्गत निर्धारित नगद दरें या दस्तूर स्थायी रूप रखते थे।[5]

1.6 लगान का कृषकों पर बोझ

लगान की दर सामान्यतः उपज का 1/3 भाग निर्धारित की जाती थी मगर मोरलैंड और इरफान हबीब के अनुसार लगान का वास्तविक बोझ किसान पर कहीं अधिक था। उसे कम से कम उपज का 1/2 भाग और सम्भवतः कहीं–कहीं 3/4 भाग लगान के रूप में देना पड़ता था क्योंकि राज्य को निर्धारित लगान

[4] यदुनाथ सरकार, आपसिट, पेज–135
[5] इरफान हबीब, दी एग्रेरियन सिस्टम ऑफ दी मुगल्स, बम्बई, 1963, पेज–94

देने के अतिरिक्त जमींदारों को भी 'दस्तूरी' अथवा 'मालिकाना' या 'हुकूके जमींदारी' के रूप में उपज का लगभग 1/10 भाग अतिरिक्त कर देना पड़ता था। इनके अनुसार मुगलकालीन राजस्व प्रणाली इस प्रकार अत्यधिक शोषणपूर्ण थी। कुरैशी एवं नोमान अहमद सिद्दीकी ने इस विचार का खण्डन करते हुए यह स्पष्ट किया है कि यदि यह व्यवस्था इतनी शोषणपूर्ण होती तो एक शताब्दी से भी अधिक समय तक यह इतनी शान्ति और सुव्यवस्था के साथ कार्य करते रहने में समर्थ नहीं होती। यह विचार सही प्रतीत होता है कि औरंगजेब के काल में और उसके बाद जब किसानों पर कर का बोझ बढ़ा तो विद्रोह एवं विप्लव की स्थिति साम्राज्य में उत्पन्न हुई। अतः यह धारणा निर्मूल है कि मुगलकालीन कृषक वर्ग कठोर शोषण और अत्याचारपूर्ण कर प्रणाली का सदा शिकार रहा। स्वयं इरफान हबीब का भी यह विचार है कि ब्रिटिशकाल की तुलना में मुगलकालीन कृषक अधिक संतोषजनक ढंग से जीवन–यापन करता था।[6]

1.7 लगान वसूली की अन्य व्यवस्थाएँ

अकबर के साम्राज्य के अधिकांश भाग, 'ज़ब्त' व्यवस्था के अधीन थे। इसके अन्तर्गत भूमि की माप और वर्गीकरण के पश्चात्, औसत उपज निर्धारित करके उसके समानुपात नगद दरों का निर्धारण कर लिया जाता था और इन्हीं दरों को मानक मानते हुए लगान की वसूली की जाती थी। अकबर के समय में यह प्रथा उसके आठ प्रान्तों में लागू थी जो नमक क्षेत्रों से लेकर सोन नदी तक विस्तृत थे और जिनमें उत्तरी भारत का समस्त मध्यवर्ती भाग शामिल था। इसके उत्तराधिकारियों के समय में इसका विस्तार अन्य क्षेत्रों में भी हुआ। दकन में यह प्रथा शाहजहाँ के समय में लागू हुई जब औरंगजेब वहाँ का सूबेदार नियुक्त हुआ। उसके दीवान, मुर्शिद कुली खाँ ने इस व्यवस्था को लागू किया। जब्त प्रथा को टोडरमल का बन्दोबस्त भी कहते हैं। एक दूसरी प्रथा 'नसक' कहलाती थी। मोरलैंड के अनुसार, इस प्रथा में भूमि की माप के बिना सामान्य रूप से लगान निर्धारित किया जाता था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार यह प्रत्येक किसान पर अलग–अलग लगान निर्धारित करने के बजाय एक क्षेत्र पर सामूहिक रूप से लगान निर्धारित करने की प्रथा थी, कुछ अन्य इसे निश्चित समय के लिए लगान निर्धारण के रूप में देखते हैं। इरफान हबीब के अनुसार यह कोई विशिष्ट प्रणाली नहीं थी बल्कि विभिन्न प्रणालियों का मिला–जुला रूप थी। इसमें भूमि की नियमित माप अनिवार्य नहीं थी, बल्कि विगत वर्षों की माप के आंकड़ों को मानक मानते हुए वर्तमान वर्ष की लगान की राशि का भी अनुमान कर लिया जाता था।

1.8 कर मुक्त अनुदान

प्रशासनिक उद्देश्यों से कृषि योग्य भूमि की कई श्रेणियाँ स्वीकृत थीं। कुछ भूमि खांलिसा के अधीन थी। यह भूमि सम्राट के प्रत्यक्ष नियंत्रण में थी और इससे प्राप्त लगान केन्द्रीय कोष में जमा होता था। जागीर भूमि प्रशासनिक अनुदान के रूप में थी जिससे प्राप्त लगान पर जागीरदारों का नियंत्रण रहता था। पैबाकी भूमि में वह जागीरें शामिल थीं जो अस्थाई रूप से केन्द्रीय नियंत्रण के अधीन रखी जाती थी। इन सबके अलावा कुछ भूमि कर–मुक्त अनुदानों के रूप में होती थी। ऐसे कर मुक्त अनुदान सोयुरगाल कहलाते थे। इनमें मदद–माश भूमि सम्मिलित थी जो अनुग्रह राशि के रूप में जरूरतमंद लोगों को प्रदान की जाती थी तथा अइम्मा अनुदान भी जो विद्वानों, बुद्धिजीवियों आदि को सहायतार्थ भेंट की जाती थी। संस्थाओं को आर्थिक सहायता प्रदान करने हेतु वक्फ भूमि का भी अनुदान होता था।

1.9 भू–स्वामित्व

[6] कैम्ब्रिज इकनामिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, खण्ड–1, पृ0461

मुगलकाल में भू–स्वामित्व की स्थिति सुस्पष्ट नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक ही भूखण्ड पर राज्य को और विभिन्न वर्गों को साथ–साथ अधिकार प्राप्त रहते थे मगर पूर्ण स्वामित्व की कोई कल्पना नहीं थी। जमींदारी का भी वास्तविक सम्बन्ध भू–स्वामित्व से नहीं बल्कि भूमि के उपयोग से सम्बन्धित अधिकारों और सुविधाओं से था। इन पारस्परिक अधिकारों और दायित्वों के बीच संतुलन बनाए रखने में कुछ तो राजकीय नियंत्रण का योगदान था और कुछ उन परम्परागत सम्बन्धों का जो ग्रामीण समुदाय को सदा से प्रभावित और नियंत्रित करते आये थे।[7]

1.10 ज़मींदार वर्ग और उसकी भूमिका

"जमींदार" फारसी भाषा क शब्द है जिसका अर्थ होता है भूमिपति। इस शब्द का प्रयोग मुगल काल में सामान्यतः ऐसे व्यक्ति के लिए किया जाता था जिसे किसान की उपज में एक निर्धारित अंश वंशानुगत रूप से प्राप्त होता था। इन जमींदारों की अलग–अलग श्रेणियाँ थीं। प्राथमिक जमींदार वह थे जो किसी भूखण्ड के स्वामी या मालिक होते थे और उस पर मजदूरों से खेती कराते थे। माध्यमिक जमींदार वह थे जो किसी भूखण्ड के मालिक थे और इस पर मजदूरों से खेती कराते थे। इसके साथ ही साथ वे अन्य किसानों से लगान को वसूली करते थे। उन्हें किसान से उपज का निर्धारित अंश प्राप्त करने का भी अधिकार था। उच्च स्तर पर जमींदार राजा थे जो उपरोक्त अधिकारों के साथ अपने क्षेत्र का प्रशासन भी स्वयं चलाते थे। सभी श्रेणियों के जमींदारों को राज्य को लगान अदा करने का दायित्व स्वीकार करना पड़ता था और उन्हें अपनी भूमि को बेचने का अधिकार प्राप्त रहता था। माध्यमिक जमींदार किसानों से उपज का 10 प्रतिशत अतिरिक्त कर रूप में भी वसूल कर सकते थे जिसे दस्तूरी या हुकूके जमींदारी कहते थे। जमींदारों के ये अधिकार एवं उनके द्वारा लगाए जाने वाले कर भू–राजस्व से पृथक थे परन्तु मुगल साम्राज्य के पतन के दिनों में यह अन्तर वस्तुतः अस्पष्ट हो गया।[8]

1.11 निष्कर्ष

मुगलकालीन भरत में नगरीय जीवन की समृद्धि बढ़ी और नगरों की संख्या में भी वृद्धि हुई। यद्यपि अर्थ–व्यवस्था का आधार अभी भी कृषि ही था मगर सल्तनतकाल की तुलना में नगरीय जीवन अधिक समुन्नत रहा। इसके कई कारण थे। मुगल सत्ता के अधीन शांति और सुव्यवस्था, मुगल शासक वर्ग का नगरीय जीवन के प्रति अनुराग, जिस कारण शिल्पकारों और दस्तकारों का वर्ग नगरों में निवास करने के लिए आकर्षित हुआ, शेरशाह के आर्थिक सुधारों के फलस्वरूप उत्तर भारत में आर्थिक एकीकरण की प्रवृत्ति, सड़कों और यातायात व्यवस्था की प्रगति और इसके फलस्वरूप व्यापार की उन्नति तथा यूरोपीय व्यापारी कम्पनियों का आगमन और तटवर्ती नगरों में बढ़ती हुई व्यापारिक गतिविधियों ने मुगल साम्राज्य में नगरों की प्रगति में विशेष योगदान दिया।

अकबर के समय में मुगल साम्राज्य में 120 नगरों और 3200 कस्बों का उल्लेख मिलता है। इनमें आबादी के दृष्टिकोण से आगरा और दिल्ली सबसे विशाल थे। फिंच नामक यूरोपीय यात्री के अनुसार आगरा और लाहौर तत्कालीन लंदन और पेरिस से बड़े शहर थे। मैनरीक ने तत्कालीन पटना की आबादी 2 लाख के लगभग बतायी है। यह संख्या यूरोपीय नगरों की आबादी की तुलना में कई गुणा अधिक थी। मुगलकालीन नगरों में प्रशासनिक केन्द्र (शाही व प्रान्तीय राजधानियाँ), व्यापारिक केन्द्र (पत्तन एवं अन्तर्देशीय नगर) धार्मिक

[7] मोरलैण्ड, दि एग्ररियन, आपसिकट, पेज–96
[8] चोपड़ा, पी0एन., आपसिट, पेज–18

तथा शैक्षिक केन्द्र सभी शामिल थे। इनकी आबादी में विभिन्न सम्प्रदाय थे जिनमें भारतीय और विदेशी, हिन्दू और मुसलमान आदि शामिल थे।[9]

नगरीय आबादी के बीच स्पष्ट वर्गीकरण था। सर्वोपरि स्थिति शासक वर्ग की थी जिसमें सम्राट और उसका परिवार, सामंत और बड़े अधिकारी शामिल थे। मध्यम वर्ग में निम्न स्तर के कर्मचारी, व्यापारी और कुछ अन्य व्यवसायी वर्ग थे जबकि साधारण स्तर पर शिल्पकार, कारीगर और सेवक वर्ग के लोग थे। विभिन्न वर्गों की स्थिति में परिवर्तन की सम्भवना सदैव बनी रहती थी और ग्रामीण समुदाय की तुलना में नगरीय समाज में अधिक गतिशीलता थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. ताराचन्द, सोसाइटी एण्ड स्टेट इन मुगल पीरियड, दिल्ली, 1961, पेज–65
2. यदुनाथ सरकार, फाल ऑफ दि मुगल एम्पायर, जिल्द–4, कलकत्ता, 1950 पेज–120.25
3. मोहम्मद यासीन, सोशल हिस्ट्री ऑफ इस्लामिक इण्डिया, लखनऊ, 1958, पेज–6
4. ए0 रशीद, सोसायटी एण्ड कल्चर इन मेडिवल इण्डिया, कलकत्ता, 1969 पेज–22
5. एस0एम0 युसूफ, सम एस्पेक्टस ऑफ इस्लामिक कल्चर, पेज–131–135
6. इरफान हबीब, दी एग्रेरियन सिस्टम ऑफ दी मुगल्स, बम्बई, 1963, पेज–94
7. उद्वत हरिशचन्द्र वर्मा, संपादक, मध्य कालीन खण्ड–2 (1540–1761), प्रथम संस्करण, 1963 हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विष्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पेज–443
8. फ्रेंकोस, पेल्सर्ट, जहांगीर्स इण्डिया, अनुवाद डब्लू0एच0 मोरलैण्ड तथा पी0गल0, दिल्ली, 1925
9. ताराचन्द, इन्फ्लुएन्स ऑफ इस्लाम ऑन इण्डियन कल्चर, इलाहाबार, 1963
10. अवध बिहारी पाण्डेय, पूर्व मध्यकालीन भारत पृ0 240: लेटर मेडिवल इण्डिया, पृ0 12–13
11. ईष्वरी प्रसाद, लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ हुमायूँ, कलकत्ता, 1956, पृ0 202
12. जे0 चौबे, हिस्ट्री ऑफ गुजरात किगंडम, नई दिल्ली, 1975, पृ0 275

    कर्नल टाड, एनल्स एण्ड एन्टीक्विटीज ऑफ राजस्थान, जिल्द 3, ऑकसफोर्ड, 1920, सम्पादित – कूक, पृ0 364–65
13. डब्ल्यू0एच0 मोरलैण्ड, दि अग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुस्लिम इण्डिया, कैम्ब्रिज 1929, पेज–84
14. के0एम0 अशरफ, लाइफ एण्ड कण्डीशन ऑफ दे पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, दिल्ली, 1959, पेज–165
15. पे0एन0 चोपड़ा, सोसाइटी एण्ड कल्चर डयूरिंग मुगल एज आगरा, 1956 पेज– 20–25
16. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मेडिवल इण्डियन कल्चर, आगरा, 1964, पेज–27
17. मोरलैण्ड, फ्राम अकबर टु औरंगजेग, लंदन, 1923, पेज7128
18. ए0एल0 श्रीवास्तव, दिल्ली सल्तनत, पृ0 578–79

[9] रिजवी, मुगलकालीन भारत, भाग–1, पृ0 191–94

19. जयशंकर मिश्र, ग्यारहवी सदी का भारत, वाराणसी, 1970, पृ0 205
20. कर्नल, जे0 टाड, एनल्स एण्ड एन्टीक्विटी ऑ राजस्थान, जिल्द 3
21. जी0एस0 घूर्या, कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया, न्यूयाके, 1950, पृ0 45